दलितों की सामाजिक प्रस्थिति का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में एक समाजशास्त्रीय विवेचन

निशान्त कुमार सोनकर[1]

भारतीय समाज में कई संस्कृति एवं सभ्याताओं का जन्म हुआ उन विभिन्न संस्कृति–सभ्यताओं के उत्थान–पतन के पश्चात् प्राचीन काल में वैदिक संस्कृति का उदय हुआ जहाँ ऋग्वेदिक समाज कर्म की महत्ता पर आधारित था। सामाजिक व्यवस्था के परिवर्तन एवं विशिष्टीकरण के पश्चात् वर्ण व्यवस्था का उदय हुआ प्रारम्भ में यह व्यक्ति के गुण, कर्म, व्यवसाय एवं स्वभाव पर आधारित था। बाद में यह व्यवस्था जन्म पर आधारित हो गयी। कालान्तर में इसी व्यवस्था के जटिलता एवं आमानवीय व्यवहारों से 'अस्पृश्यता' का जन्म हुआ। तत्पश्यात् समाज में एक 'अस्पृश्य या अन्त्यज वर्ग का उदय हुआ। ऋग्वैदिक काल में आर्यों की सामाजिक व्यवस्था में, प्रारम्भ में केवल तीन वर्गों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) का ही उल्लेख है जबकि ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल के 'पुरूष सूक्त' में चारो वर्गों का उल्लेख प्रथम बार हुआ। इस काल में वर्ण, कार्य विभाजन को दर्शाता है। इसी से प्रमाणित होता है कि जाति का उत्पत्ति कालान्तर में वर्ण व्यवस्था के जटिल हो जाने के कारण हुई।

सामान्यतया जाति को एक ऐसे अर्न्तविवाही बन्द समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसकी मुख्य विशेषता जन्म द्वारा सदस्यता, अधिकारों व कर्त्तव्यों का निर्धारण, अन्तर्जातीय खान–पान पर प्रतिबन्ध तथा सामाजिक संस्तरण में ऊँचे–नीच पर आधारित तथा भेद–भाव, पद और प्रस्थिति का परम्परा द्वारा निर्धारण है।[1] मूल रूप से जाति हिन्दू पवित्रता, श्रेष्ठता एवं हीनता की अवधारणाओं द्वारा भारतीय संरचना में कुछ ऐसे पूर्वाग्रह, जैसे–मूल्य तथा व्यवहार–प्रतिमान उत्पन्न हुए जिससे समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक निर्योग्यताओं का उदय हुआ। इन निर्योग्यताओं से युक्त जीवन जीने वाली जातियों को अस्पृश्य/अनुसूचित/दलित आदि के रूप में जाना जाता है। ये ग्यारह सौ जातियों व उप–जातियों में विभक्त है। वैदिक काल में धर्मवादी 'पवित्रता' की धारणा अत्यन्त प्रखर थी। परन्तु अस्पृश्यता की धारणा आज जिस रूप में है, वैसी नही थी। घूरिये[2] का विचार है कि ईसा से 800 वर्ष पूर्व धार्मिक पवित्रता की भावना पूर्णतया देखने को मिलती थी और न केवल वह 'चाण्डालों' पर लागू था बल्कि ''शूद्रों'' पर भी समान रूप से लागू था। धर्म संस्कारों ने एक ब्राह्मण नारी और शूद्र पुरूष से उत्पन्न सन्तान को चण्डाल कहा। मनु के समय में न इन्हें केवल गाँव से निकाला जाता था बल्कि इन्हें ऐसे काम दिये गए जिससे स्पष्ट हो जाए कि ये मनुष्य जाति के अलग नमूने हैं।

दलित मध्यकाल में अति शूद्र या अस्पृश्य, या अन्त्यज के रूप में जाने जाते थे। इनके द्वारा समाज व व्यक्ति की स्वचछता के लिए किए जाने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य के बावजूद उन्हें हेय की दृष्टि से देखा जाने लगा था।

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना में 'अनिर्वसित' शब्द का सम्बन्ध शूद्रों (सामान्य या असत्) से था तथा 'निर्वसित' शब्द– अस्पृश्य त्याज्य शूद्रों (निम्न या असत् शूद्रों) को कहा जाता था।[3]

'दलित' शब्द का उद्भव मराठी भाषा से हुआ जिसका प्रथम प्रयोग ज्योतिबा राव फूले ने किया जिसका अर्थ टुकड़ों में 'टुटा हुआ' विह्वल, दुःखी आदि से लगाया गया,

[1] वरिष्ठ शोध–छात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

क्योकि समाज में इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ये सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि प्रकार से शोषित थे। सर्वप्रथम ब्रिटिश काल में इन अछूतों या अस्पृश्यों को दलित वर्ग के नाम से पुकारा गया। 1935 के अधिनियम के पहले तक भारत सरकार 'दलित वर्ग' जैसे शब्दों का प्रयोग करती थी। 1931 की जनगणना में दलित वर्ग के वर्गीकरण के लिए जिन नौ परीक्षणों का उल्लेख किया गया वे सब छुआ–छूत, मन्दिर प्रवेश और अन्य सामाजिक व्यवहारों पर आधारित थे।

'अनुसूचित जाति' शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग साइमन कमीशन एवं तत्पश्चात् भारत सरकार 1935 के अधिनियम के तहत 1936 में किया। आज अनुसूचित जाति शब्द एक राजनीतिक न्यायिक एवं संवैधानिक शब्द है। भारत में आधुनिक युग से पहले अछूतों का अपना नाम चुनने की आजादी नहीं थी 1933 में गाँधी जी ने इन्हें हरिजन (ईश्वर की संतान) कहा, जिसे अब अपमान जनक माना जाता है। अंग्रेजों ने अपनी सुविधानुसार इस वर्ग को आऊट कास्ट, डिप्रेस्ड कास्ट, एक्सटेरियर काष्ट का नाम दिया।[4]

मजूमदार के शब्दों, में अछूत जातियाँ वे है जो सामाजिक और राजनैतिक निर्योगयताओं की शिकार हैं।[5] डॉ0 शर्मा के अनुसार अछूत जातियाँ वे जातियाँ हैं जिसके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाय और पवित्र करने के लिए इन जातियों के पास कुछ भी नहीं है।

वृहद अंग्रेजी– हिन्दी कोष में दलित वर्ग के अतिरिक्त हरिजन और अस्पृश्य जातियों का उल्लेख है।[6] मानक अंग्रेजी–हिन्दी कोश में दलित शब्द के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द दिया गया है, जिसका अर्थ दबाना, नीचा करने, झुकाना, विनत करना, नीचे लाना, स्वर नीचा करना, धीमा करना, म्लान करना, दिल तोड़ता है तथा दलित वर्ग का अर्थ– नीची जातियों के लोग, अछूत, हरिजन, पीड़ित दबाए हुए, पददलित, कुचले–सताए हुए लोग दिए हुए हैं।[7] हिन्दी शब्दकोशों में दलित का अर्थ मसला हुआ, मर्दित दबाया हुआ, रौंदा हुआ, खंडित, विनष्ट किया हुआ।[8]

प्राचीन काल में दलितों के लिए शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। शूद्र अर्थात् दलित को भारतीय समाज के उच्च वर्ग द्वारा अस्पृश्य, हरिजन[9] और बहिष्कृत[10] शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे जातिगत वैषम्य समाप्त किया जा सके। भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को चतुर्थ श्रेणी में रखा गया है तथा प्रायः उन्हें अछूत माना गया। मद्रास में शूद्रों को 'पंचम' कहा जाता है, इन्हीं पंचमो (शूद्रो) को महर्षि विवेकानन्द ने 'दलित वर्ग' कहा है।

भारतीय वर्ण–व्यवस्था के द्वारा पुरोहित–वर्ग (ब्राह्मण) ने स्वयं की धर्म सम्मत सर्वोच्चता को सिद्ध करते हुए दलितों को निम्नतम् प्रस्थिति प्रदान की। उन्होंने ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न अंगों से, अर्थात्, ब्रह्मा के मुख से 'ब्राह्मण', बाहु (भुजाओं) से क्षत्रिय, अरू (उदर) से वैश्य और पादम्या (पैरों) से शूद्रों का जन्म हुआ।[11] ऋग्वेद में मुख्यतः दो वर्गों का उल्लेख है– 'आर्य' तथा 'अनार्य' (या दास)।

अथर्ववेद के प्रारंभिक भागों में शुद्र को एक जनजाति के रूप में चित्रित किया गया है। एक स्थान पर 'तक्मन' नामक महामारी से प्रार्थना की गई है कि वह अन्य जनजातियों के साथ शूद्र महिलाओं को भी ग्रसित करें। महाभारत में 'आभीरो' के साथ शूद्रों की चर्चा अनेक स्थानों पर जनजाति के रूप में ही हुई हैं इस महाकाव्य में शुद्र कुल का उल्लेख क्षत्रिय और वैश्य कुलों के साथ हुआ है।[12] और शूद्रों जनजाति का वर्णन आभीरों, ददरों, तुखारों, पहलावों आदि के साथ हुआ है।[13]

वैदिक युग में इसका कोई प्रमाण नहीं है कि दास और शूद्रों को अपवित्र या अछूत मानने और इनके स्पर्श से उच्च वर्ण के लोगों का शरीर तथा भोजन दूषित हो जाता था। फिक ने लिखा है : ''केवल सैद्धान्तिक विवादों को छोड़कर प्राचीन पालि ग्रन्थों में ऐसा कोई भी वर्णन नही आता जिससे यह सिद्ध होता हो कि शूद्र चतुर्थ वर्ण के रूप

में वस्तुतः विद्यमान थे।''

शूद्रों का सेवक होना उत्तर वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थों से ज्ञात होता है। आपस्तंब धर्मसूत्र में उल्लेख है कि शूद्र को अपने से उच्च तीन वर्णों के लोगों की सेवा करके अपना भरण–पोषण करना चाहिए। किन्तु, प्रसिद्ध विद्वान रामशरण शर्मा के मतानुसार, ''शूद्र समुदाय के अधिकांश लोग संभवतः कृषि कार्यों में ही लगे रहते थे।''[14] मज्झिम निकाय के एक परिच्छेद में चारों वर्ण की आजीविका का एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया हैं। इसके अनुसार, ''ब्राह्मण अपना जीवन–यापन भिक्षा से, क्षत्रिय तीर–धनुष के प्रयोग से, वैश्य व्यापार एवं पशुपालन से तथा शूद्र हँसिया से फसल काटकर उसे अपने कंधों पर बँहगा से ढोकर करता था।[15]

कौटिल्य चांडालों को शूद्र मानने के सन्दर्भ में स्पष्ट नहीं है। कौटिल्य शूद्रों तथा चांडाल के मध्य अन्तर करते हैं तथा अछूतों को पाँचवें वर्ण के रूप में स्थित करने का प्रयास किया है। शास्त्रीय वर्ण–व्यवस्था में सामान्यतया पंचम–वर्ण का कोई स्थान नहीं था। रोमिला थापर अपनी पुस्तक 'एंशिएंट इण्डियन सोशल हिस्ट्री में लिखा हैः ''चातुर्वर्ण्य के बुनियादी ढाँचे में किसी प्रकार के परिवर्तन के लिए गुंजाइश ही नहीं थी।'' परन्तु, मनु तथा अन्य हिन्दू समाज विधान निर्माताओं ने चारों वर्ण तथा चांडालों जैसे अस्पृश्यों के बीच जो विभाजन रेखा खींची उससे ही कालांतर में पाँचवें वर्ण की अवधारणा प्रकाश में आयी। इसके अलावा पंचमवर्ण का उल्लेख 'सांब पुराण' में भी हुआ है।[16]

तीसरी से छठी शताब्दी ई0 में ब्राह्मण–परम्परा के धर्म एवं समाज विधायकों तथा विष्णु गुप्त याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति और कात्यायन आदि के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि अस्पृश्यता को मानने एवं उसके पालन का विस्तार हुआ तथा इस काल में अछूतों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में गिरावट आई। इसी काल में अछूतों के लिए 'अस्पृश्य' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसी काल में कहा गया कि यदि कोई अस्पृश्य जान–बूझकर किसी द्विज का स्पर्श करता है तो उसे मृत्यु दण्ड दे दिया जाय।

महाकाव्यों से प्राप्त साक्ष्य से स्पष्ट है कि अस्पृश्य अपनी वर्तमान स्थिति के लिए स्वयं को दोषी न मानकर सामाजिक व्यवस्था को मानने लगे थे और अपने ऊपर बलात् थोपी गई वर्जनाओं को अस्वीकार करने लगे थे हालाँकि धर्म–ग्रन्थों में अस्पृश्यता को वर्ण–व्यवस्था के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकारा गया है। भागवद् गीता (लगभग दूसरी शताब्दी ई0पू0) में वर्तमान सामाजिक प्रणाली में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई है, परन्तु पुराने ढाँचे को बिना प्रभावित किये। उदाहरणार्थ,

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे हस्तिनि।
शुनि चैव श्रपाके च पंडिताः समदर्शिनः।।

अर्थात्, ज्ञानी लोग विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, कुत्ता, हाथी और श्रपाक (अछूत) सबको समान दृष्टि से देखते हैं। यद्यपि इस श्लोक में अस्पृश्यों को गाय, कुत्ता और हाथी जैसे जानवरों की श्रेणी में रखा गया है तथापि यह श्लोक क्रांतिकारी है क्योंकि इसमें विद्वान और ब्राह्मण में अन्तर दिखाए जाने के साथ ही ब्राह्मण तथा अस्पृश्य में काई अन्तर नही किया गया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि घृणा की जिस भावना से अस्पृश्यता का विकास हुआ उसका विस्तार उत्तर के आर्यों से लेकर दक्षिण के द्रविड़ो तक था। इनके मध्य आज भी तीव्र अस्पृश्यता की भावना विद्यमान है। परन्तु यह प्रमाणित नहीं है कि आर्यों द्वारा द्रविड़ों के आमसात् के पूर्व दक्षिण में अस्पृश्यता मौजूद थी। इसके विपरीत दक्षिण के विधि प्रवर्तक बौधायन तथा आपस्तंब ने आहार और स्पर्श के विषय में शूद्रों के प्रति उतना कट्टर दृष्टिकोण नही अपनाया है जितना उत्तर के धर्मसूत्रों के रचयिताओं ने अपनाया।[17]

मध्य काल के पूर्व ही जाति व्यवस्था इतनी जटिल हो गयी थी कि हिन्दू समाज में देवी–देवताओं को जाति के अनुसार बाट दिया गया जिसके अनुसार–अग्नि एवं वृहस्पति ब्राह्मणों के देवता–इन्द्र, वरूण, यम, क्षत्रियों के देवता–वशु, इन्द्र, विश्वदेव एवं महत–वैश्यों के देवता एवं पूषन–शूद्रों के देवता थे, इस प्रकार शूद्र पूषन देव की पूजा करते थे।[18]

वैदिक तथा ब्राह्मण धर्म के विरोध में खड़े हुए धार्मिक सुधार आन्दोलनों ने शूद्रों के प्रति नरम रूख अपनाया था। बौद्ध धर्म में प्रवेश के लिए चारों वर्ण के लोगों के लिए द्वार खुला हुआ था। किसी भी वर्ण तथा शूद्रों के लिए संघ में प्रवेश की अनुमति थी, यहाँ तक कि बौद्ध धर्म ने चांडालों और पुक्कसों जैसे घोर अछूतों को भी दीक्षा और निर्वाण प्राप्त करने का अधिकारी बताया। जैन धर्म ने भी प्रारम्भ में सभी वर्णों को मठ में प्रवेश की अनुमति दी और चांडालों के उत्थान का भी प्रयास किया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बुद्ध की प्रथम शिष्या वेश्या और महावीर की प्रथम शिष्या दासी थी जो बंदी बनाकर लाई गई थी।[19]

स्वयं बुद्ध ने राजा अजातशत्रु से प्रश्न किया था, ''जिस व्यक्ति को आप साधारण स्थिति में दास या नौकर समझते हैं, वही व्यक्ति यदि संघ की शरण में आ जाए तो आप उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे?'' अज्ञातशत्रु ने स्वीकार किया कि, ''उसे सम्मानित और प्रतिष्ठि व्यक्ति मानकर और आसन, परिधान, भिक्षा–पात्र, आवास और औषधि का प्रबंध कर वह उसका आदर करेगा।''[20] बुद्ध और अज्ञातशत्रु के इस वार्तालाप से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि निम्न वर्ग के हीन लोग जो सन्यास ग्रहण कर लेते थे, उन्हें न केवल तात्कालिक निर्धनता से मुक्ति प्राप्त हो जाती थी, बल्कि उन्हें अगले जन्म में अच्छा कुल तथा सुखमय जीवन बिताने के लिए भी पर्याप्त पुण्य हो जाता था। शूद्र वर्ण के गरीब लोग तो केवल भौतिक लाभ की दृष्टि से ही संघ में शरण लेते थे। वे भिक्षुओं के समान जीवन व्यतीत करने की कामना करते थे जो अच्छा भोजन करके बाहर की हवा से बचकर आराम से बिछावन पर लेटते हैं।[21]

उपर्युक्ति विवचेनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, 'शूद्र/दलित को सामान्यतया चातुर्यवर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत मानना पूर्णतया सत्य धारणा प्रतीत नही होता हे, इस तथ्य को हमारे प्राचीन ग्रन्थों के साथ आधुनिक विचारकों द्वारा भी अपने अध्ययन में सिद्ध किया जा चुका हैं। इसी धारणा के आधार पर स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान गाँधी जी और अन्य समाज सुधारवादी विचारधाराओं के नेताओं से बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर का मतभेद हुआ और अम्बेडकर ने गाँधी जी से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि, ''दलित वर्ण–व्यवस्था के चतुर्थ–वर्ण के अन्तर्गत नहीं रखे जा सकते। अतः दलितों को अग राज्य के रूप में ''दलितलैण्ड'' दिया जाय।''

इसके पीछे अम्बेडकर का तर्क था कि, दलितो को हिन्दू किसी भी दृष्टि से मानव नही मानते, बल्कि जानवर से भी बदतर मानते हैं। इसलिए दलितों को ''पंचम वर्ण'' के रूप में देखा जाना सर्वथा उचित है।[22] इस मत को व्यक्त करने के पीछे अम्बेडकर का हिन्दू धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता तथा दलितों पर आरोपित निर्योग्यता भी एक कारण था। यही वजह है कि, अम्बेडकर अन्ततः हिन्दू धर्म का परित्याग करके बौद्ध धर्म को अंगीकृत किया।

सारांशतः कहा जा सकता है कि प्राचीन ग्रन्थो वेद, पुराण आदि में वर्णित दलित वर्ग की सामाजिक स्थिति अति दयनीय रही है तथा उनका समाज में स्थान भी निम्न रहा है जिन्हें समाज के साथ चलाने हेतु इनका सामाजिक विकास करना अति आवश्यक है, एवं उच्चवर्गीय व्यक्ति के दृष्टि में भी इनका सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक दृष्टि से इनका विकास करना होगा तभी ये समाज से कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकते है।

संदर्भ सूची

1. Atal, Yogesh : The changing Fronties of Caste, National, Delhi, 1968, pp. 1-10
2. Ghurye, G.S. : 'Caste-Class and Occupation', Popular Book Depot., 1961 p. 261.
3. कामद्वक नीतिसार 1/16।
4. Sharma, R.S., Aspects of Political Ideas and Institution Ancient India, p – 20
5. Majumdar, Dr. D.N. : "Races and Culture of India".
6. वृहद अंग्रेजी–हिन्दी कोश (प्रथम भाग), हरदेव बाहरी, पृ0 504।
7. मानक अंग्रेजी– हिन्दी कोश, सत्यप्रकाश, पृ0 362।
8. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, संपादक रामचन्द्र, पृष्ठ 468।
9. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, सम्पूर्ण वांग्मय, खण्ड–9, नई दिल्ली, 1995।
10. ऋग्वेद, पुरूष सूक्त, 10–90–12।
11. महाभारत, खण्ड– 2, 28.8.9।
12. फिक : 'द सोशल ऑर्गेनाइजेशन ऑफ नार्थ इण्डिया' , पृ0 314।
13. आपस्तंब धर्मसूत्र, पृ0 54–57।
14. शर्मा, प्रो0 रामशरण : 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास', पृ0 93।
15. मज्झिम निकाय, खण्ड–2, पृष्ठ 180।
16. जातक, खण्ड–1 पृ0 372।
17. सिंह, डॉ0 नरेन्द्र सिंहः 'दलितों के रूपांतरण की प्रक्रिया', राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1993, पृ0 49।
18. वृहदारण्यक उपनिषद, 1.4.13. एतेरेथ ब्राह्मण 11.19।
19. मज्झिम निकाय, खण्ड–2 पृ0 103।
20. दीर्घ निकाय, खण्ड–1, पृ0 60–61।
21. विनय पिटक, खण्ड–1 पृ0 77।
22. अम्बेडकर, डॉ0 भीमराव : ''बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर', सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 9, डॉ0 अम्बेडकर प्रतिष्ठान, कल्याण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, नवम्बर 1995, पृ0 174।